



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

रिट याचिका संख्या 1328/2003

याचिकाकर्ता:

नरेंद्र कुमार मिश्रा

बनाम

उत्तरदाता:

छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य

आदेश

12-12-2006 के लिए सूचिबुद्ध करें



सही /-

सतीश के अग्रिहोत्री

न्यायाधीश



छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय बिलासपुर

रिट याचिका क्रमांक 1328/2003

याचिकाकर्ता :

नरेंद्र कुमार मिश्रा

बनाम-

उत्तरदाता :

छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य

याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजेंद्र तिवारी, अधिवक्ता श्री सुनील ओटवानी और अधिवक्ता श्री अमिताभ गुप्ता उपस्थित ।

उत्तरवादी संख्या 1 और 2 के लिए शासकीय अधिवक्ता श्री ए.एस. कच्छवाहा, उप महाधिवक्ता श्री एन.के. अग्रवाल के साथ।

आदेश

(12 दिसम्बर, 2006 को पारित)

न्यायालय का यह आदेश न्यायमूर्ति सतीश के. अग्रिहोत्री द्वारा पारित किया गया।

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत दायर वर्तमान रिट याचिका में पुलिस महानिरीक्षक, बिलासपुर रेंज द्वारा पारित दिनांक 19.8.1999 (अनुलग्नक पी/2) के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें निलंबन अवधि के लिए निर्वाह भत्ते के भुगतान के साथ याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गई थी और पुलिस महानिदेशक, रायपुर/उत्तरवादी क्रमांक 2 द्वारा पारित दिनांक 2.5.2002 (अनुलग्नक पी/3) के आदेश को चुनौती दी गई है।

2. संक्षेप में निर्विवाद तथ्य यह है कि तीन आरोपों वाली आरोप पत्र में, सबसे पहले, याचिकाकर्ता ने 7.2.1999 को रोजनामचा सनहा में गलत प्रविष्टि की, जिसमें यह दर्शाया गया कि याचिकाकर्ता अभियुक्त सौदा भाईना की गिरफ्तारी के लिए बिहार गया था, जबकि वास्तव में याचिकाकर्ता अन्य कर्मचारियों के साथ 11.2.1999 को बिहार के लिए रवाना हुआ था। रोजनामचा में गलत प्रविष्टि छत्तीसगढ़/मध्य प्रदेश पुलिस विनियमन के विनियमन संख्या 634 का उल्लंघन है। दूसरे, याचिकाकर्ता ने मध्य प्रदेश सिविल सेवा (अवकाश) नियम, 1977 (जिसे



आगे "नियम, 1977" कहा जाएगा) के नियम 17 और मध्य प्रदेश सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1965 (जिसे आगे "नियम, 1965" कहा जाएगा) के नियम 3 (3) के तहत कार्यालय में वापस रिपोर्ट किए बिना अनुपस्थित रहकर और रिवॉल्वर दूसरे अधिकारी के पास भेजकर कदाचार किया। तीसरे, रायगढ़ स्थित निवास से बीमार होने की रिपोर्ट भेजकर मध्य प्रदेश सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1965 के नियम 3 (2) और (3) के तहत कदाचार किया।

3. श्री टी. एक्का, अनुविभागीय अधिकारी (पुलिस), सक्ती, जिला जांजगीर-चांपा को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। जांच अधिकारी ने 16.7.1999 को जांच पूरी की और 23.7.1999 को जांच रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक, जांजगीर-चांपा को भेजी, जिन्होंने इसे पुलिस महानिरीक्षक, बिलासपुर रेंज को सौंप दिया। जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस महानिरीक्षक, बिलासपुर रेंज ने 19.8.1999 के आदेश (अनुलग्नक पी/2) द्वारा याचिकाकर्ता को निलंबन अवधि के भुगतान के अतिरिक्त दंड के साथ उसकी सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया।

4. इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने पुलिस महानिदेशक के समक्ष अपील दायर की। पुलिस महानिदेशक, रायपुर ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को दिनांक 2.5.2002 के आदेश (अनुलग्नक पी/3) के तहत यह कहते हुए खारिज कर दिया कि अपील में कोई सार नहीं है और पुलिस महानिरीक्षक द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है।

5. याचिकाकर्ता ने आगे व्यथित होकर दिनांक 12.6.2002 को गृह सचिव, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर के समक्ष एक और अपील दायर की, जो अभी भी विचाराधीन है।

6. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि याचिकाकर्ता को तत्कालीन मध्य प्रदेश राज्य के पुलिस महानिरीक्षक द्वारा 1.6.1983 को उप-निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में याचिकाकर्ता की सेवाओं को 16.6.1983 को उप-निरीक्षक के रूप में पुष्टि की गई थी।

7. 2.2.1999 को लूटपाट की घटना की सूचना मिली थी, याचिकाकर्ता को बाराद्वार थाने के प्रभारी के रूप में सूचना मिली थी कि मिडिल स्कूल के शिक्षक फेकूलाल को वेतन केंद्र कैथा से वेतन लेकर जाते समय छीतापरारिया के पास कुछ बदमाशों ने रोककर लूट लिया। यह सूचना मिलने के बाद याचिकाकर्ता ने देहाती नालिशी 00/99 दर्ज की और जांच के लिए मौके पर पहुंचे।

8. याचिकाकर्ता ने भारतीय दंड संहिता की धारा 394 और 397 के तहत अपराध क्रमांक 21/99 दर्ज कराया। इस बीच, पुलिस अधीक्षक श्री राज कुमार देवांगन भी मौके पर पहुंचे और



आगे की जांच के लिए कई दल अपने दल का गठन किया। याचिकाकर्ता भी ऐसी ही एक दल का प्रमुख था।

9. याचिकाकर्ता ने अपनी के साथ केकराभाट में लखन भैना के घर पर छापा मारा, लेकिन लखन भैना नहीं मिला। उसकी माँ से पूछताछ करने पर पता चला कि लखन भैना बिहार के धनबाद जिले के कतरास पुलिस स्टेशन का रहने वाला है। 3.2.1999 को याचिकाकर्ता अपनी के सदस्यों के साथ लखन भैना और उसके साथियों की तलाश में बिहार गया।

10. 5/6.2.1999 की मध्य रात्रि को याचिकाकर्ता ने लखन भैना के घर पर छापा मारा और उसे पकड़ लिया तथा उसके निर्देश पर सौदा भैना के घर पर छापा मारा, जो मौके से भागने में सफल रहा, लेकिन उसकी भाभी से 1,98,600/- रुपये की राशि बरामद की गई।

11. याचिकाकर्ता ने अपनी के सदस्यों के साथ 7.2.1999 को सुबह 6 बजे लखन भैना के साथ पुलिस स्टेशन, बाराबाद में रिपोर्ट की। उसी दिन याचिकाकर्ता ने अपनी के साथ केकराभाट में कई जगहों पर छापेमारी की और मोहित चंद्रा और बाघराय भैना और अन्य आरोपियों को गिरफ्तार किया और उनकी हिरासत से 8,05,000/- रुपये की राशि भी जब्त की।

12. इसके बाद याचिकाकर्ता ने उक्त राशि जमा कर दी। उक्त अभियुक्तगण को पुलिस अभिरक्षा में रखा गया। 8.2.1999 को एक स्थानीय दैनिक में समाचार भी प्रकाशित हुआ।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजेंद्र तिवारी तथा विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील ओटवानी और श्री अमिताभ गुप्ता ने निम्नलिखित आधारों पर उक्त आदेशों की वैधता को चुनौती दी:

(i) जारी किया गया कथित आरोप-पत्र याचिकाकर्ता को कभी भी एम.पी./सी.जी. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1966 (जिसे आगे "नियम, 1966" कहा जाएगा) के नियम 30 के तहत निर्धारित तरीके से नहीं दिया गया। उत्तरवादी/नियोक्ता ने इस तथ्य को जानने के बावजूद कि याचिकाकर्ता बीमार था और भुवनेश्वर में उसका इलाज चल रहा था, कथित तौर पर आरोप-पत्र को उसके रायगढ़ स्थित आवास पर चस्पा किया गया, जिसे याचिकाकर्ता ने कभी प्राप्त नहीं किया।

(ii) याचिका कर्ता को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना जांच एकपक्षीय पूरी कर दी गई। बर्खास्तगी का आदेश पारित होने से पहले याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट नहीं दी गई। याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी का आदेश भी नहीं दिया गया।



(iii) आरोप-पत्र और जांच रिपोर्ट की अदम तामीली ने याचिकाकर्ता के मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है, क्योंकि याचिकाकर्ता को उत्तरवादीगण/नियोक्ता द्वारा प्रस्तुत साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करके अपना मामला आगे बढ़ाने और जांच अधिकारी के समक्ष अपनी अनदेखा साबित करने का कोई अवसर नहीं मिला।

(iv) जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों और साक्ष्यों के अभाव में अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपना मामला उचित रूप से न रख पाने के कारण याचिकाकर्ता को और अधिक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा।

(v) याचिकाकर्ता जांच अधिकारी की नियुक्ति पर आपत्ति नहीं कर सका, क्योंकि वह याचिकाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह रखता था।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पूरी अनुशासनात्मक कार्यवाही खराब और दोषपूर्ण थी क्योंकि याचिकाकर्ता (अपचारी कर्मचारी) को आरोप-पत्र नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि पूरी विभागीय कार्यवाही, उसके परिणामस्वरूप पारित बर्खास्तगी के आदेश को खराब और अवैध मानते हुए रद्द कर दिया जाना चाहिए।

15. श्री एन.के. अग्रवाल, विद्वान उप महाधिवक्ता तथा श्री ए.एस. कच्छवाहा, विद्वान शासकीय अधिवक्ता उत्तरवादीगण की ओर से उपस्थित हुए, उन्होंने तर्क किया कि 24.3.1999 को याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से आरोप-पत्र देने का प्रयास किया गया था। याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में, साक्षियों की उपस्थिति में उसके घर पर आरोप-पत्र चस्पा कर दिया गया था 3.5.1999 को, शक्ति स्थित उसके सरकारी आवास पर नोटिस जारी किया गया, जिसे भी तामील नहीं किया जा सका। इसके बाद, 26.5.1999 को दैनिक भास्कर, 28.5.1999 को दैनिक नवभारत तथा 28.5.1999 को दैनिक कंकरम में भुवनेश्वर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में नोटिस का प्रकाशन किया गया।

16. उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जांच शुरू होने के बाद, सुनवाई की तारीखों की जानकारी देते हुए पंजीकृत डाक से कई नोटिस भेजे गए, जिन्हें याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सका। जांच 16.7.1999 को एकतरफा समाप्त हो गई। प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि नोटिस का प्रकाशन और उनके आधिकारिक पते पर आरोप-पत्र चस्पा करना, 1966 के नियम 30 का पर्याप्त अनुपालन है और इस प्रकार आरोप-पत्र याचिकाकर्ता को विधिवत रूप से दिया गया था। याचिकाकर्ता ने ऐसा नहीं किया। जानबूझकर जांच में भाग लिया और एकपक्षीय जांच समाप्त हो गई। उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अंतिम तर्क दिया



कि याचिकाकर्ता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के इनकार की शिकायत नहीं कर सकता है जब याचिकाकर्ता ने पर्याप्त सूचना के बावजूद विभागीय कार्यवाही में भाग नहीं लिया। प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे इस बात से इनकार किया कि उसकी बीमारी और भुवनेश्वर में उपचार पुलिस अधीक्षक के कार्यालय में किया गया या प्राप्त किया गया।

17. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है, तकी और संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन किया है। यह स्पष्ट है कि आरोप-पत्र वास्तव में याचिकाकर्ता को नहीं दिया गया था। दोषी कर्मचारी के आधिकारिक और स्थायी निवास पर आरोप-पत्र चस्पा करना नियम, 1966 के नियम 30 का पर्याप्त अनुपालन नहीं है। नियम, 1966 का नियम 30 निम्नानुसार है:

"30. आदेशों, नोटिसों आदि की तामील. इन नियमों के अधीन किया गया या जारी किया गया प्रत्येक आदेश, नोटिस और अन्य आदेशिका संबंधित सरकारी कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से तामील की जाएगी या उसे पंजीकृत डाक द्वारा भेजी जाएगी।"

नियम 30 में तामील के तरीके के बारे में बताया गया है। वैधानिक प्रावधान में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि इन नियमों के तहत जारी या जारी किए गए आदेश, नोटिस और अन्य प्रक्रिया संबंधित सरकारी कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से तामील की जाएगी या उसे पंजीकृत डाक से भेजी जाएगी। इन नियमों के नियम 14 के तहत शुरू किए गए किसी भी नोटिस या किसी अन्य प्रक्रिया या आरोप-पत्र की तामील प्रकाशन सहित किसी अन्य माध्यम से करने का कोई प्रावधान नहीं है।

18. विभागीय कार्यवाही की शुरुआत आरोप-पत्र की तामील से शुरू होती है। याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र की तामील नहीं की गई, लेकिन उसके बाद विभागीय जांच शुरू करने और विभागीय जांच में तारीखें तय करने के लिए नोटिस पहले अखबारों में प्रकाशित किए गए और उसके बाद कुछ नोटिस रजिस्टर्ड डाक से भी भेजे गए। जांच शुरू करने की नोटिस का बाद में प्रकाशन और विभागीय जांच की तारीखों का बाद में संचार पंजीकृत डाक द्वारा की गई कार्यवाही आरोप-पत्र की वास्तविक सेवा के दायरे और दायरे में नहीं आती है। इस प्रकार, पूरी कार्यवाही दोषपूर्ण है और उसके बाद पारित किए गए आक्षेपित आदेश भी गलत हैं।

19. **यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम मोहम्मद रमजान खान¹** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रकृति में अर्ध-न्यायिक है। इसमें आरोप और खंडन होता है जिसके बाद जांच होती है जिसमें साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं और निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले सामग्री का मूल्यांकन किया जाता है। ये पहलू मामले को अर्ध-न्यायिक बनाते हैं और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को आकर्षित करते हैं। दोषी कर्मचारी को



वास्तविक अवधि में आरोप-पत्र दिया जाना चाहिए ताकि वह जांच से पहले आरोपों का जवाब दाखिल कर सके, साक्ष्य दर्ज कर सके और निष्कर्ष से पहले जांच अधिकारी को उपलब्ध कराई गई सामग्री के आधार पर प्रस्तुतियां दे सके।

20. **भारत संघ एवं अन्य बनाम के.वी. रंकीरामन एवं अन्य²** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "यह केवल तभी होता है जब अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोप-ज्ञापन या आरोप-पत्र जारी किया जाता है यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही/दांडिक अभियोजन जारी किया जाता है तो यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही/दांडिक अभियोजन प्रारंभ किया जाता है।"

21. **दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम एच.सी. खुराना³** के मामले में विभागीय कार्यवाही शुरू करने के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने कण्डिका 9 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:—"9. अब प्रश्न यह है कि वह कौन सी अवस्था है, जब यह कहा जा सकता है कि 'अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया गया है कार्यवाही'? हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय आरोप-पत्र जारी करने के बाद नहीं हो सकता है, क्योंकि आरोप-पत्र जारी करना अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के निर्णय का परिणाम है। आरोप-पत्र तैयार करना, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के निर्णय पर आरोपों की जांच करने के लिए उठाया गया पहला कदम है। आरोप-पत्र सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के आधार पर तैयार किया जाता है; फिर उसे अपना स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाने के लिए आरोप-पत्र उस पर तामील किया जाता है; यदि स्पष्टीकरण संतोषजनक है, तो कार्यवाही बंद कर दी जाती है, अन्यथा आरोपों की जांच की जाती है; यदि आरोप साबित नहीं होते हैं, तो कार्यवाही बंद कर दी जाती है और जुर्माना लगाया जाता है। इस प्रकार, सरकारी कर्मचारी पर आरोप-पत्र की तामील अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के निर्णय के बाद होती है, और यह उस निर्णय से पहले या उसके साथ मेल नहीं खाती है। आरोप-पत्र तैयार होने और भेजे जाने के पश्चात् सरकारी कर्मचारी को उसकी तामील में यदि कोई विलम्ब होता है, तो उसका अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में विलम्ब होने के रूप में प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि आरोप-पत्र की तामील के माध्यम से सरकारी कर्मचारी को उसके विरुद्ध अधिरोपित आरोपों की सूचना देना, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए प्राधिकारियों की निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है।"

22. **भारत संघ एवं अन्य बनाम दीनानाथ शांताराम कारेकर⁴** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कडिका 10 में निम्नानुसार टिप्पणी किया है :—



"10. जहां अनुशासनात्मक कार्यवाही आरोप-पत्र जारी करके शुरू करने का इरादा है, इसकी वास्तविक सेवा आवश्यक है क्योंकि जिस व्यक्ति को आरोप-पत्र जारी किया जाता है, उसे अपना जवाब प्रस्तुत करना और उसके बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही में भाग लेना आवश्यक है। इसी तरह, जब कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है, तो कर्मचारी को उसके खिलाफ की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई का जवाब देने के लिए कहा जाता है। चूंकि दोनों स्थितियों में, कर्मचारी को एक अवसर दिया जाता है अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए, "संचार" के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है और "वास्तविक सेवा" को साबित और स्थापित किया जाना चाहिए। यह पहले ही पाया जा चुका है कि मूल उत्तरवादी दीनानाथ शांताराम कारेकर को न तो आरोप-पत्र और न ही कारण बताओ नोटिस कभी दिया गया था। परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही खराब हो गई।"

23. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शत्रुघ्न लाल व अन्य⁵** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कंडिका 10 में निम्नलिखित टिप्पणी की थी।

"10. यह भी पाया गया है कि प्रारंभिक जांच के दौरान, उत्तरवादी के खिलाफ उसकी अनुपस्थिति में कई साक्षियों की जांच की गई थी और यह सही भी है क्योंकि अपचारी प्रारंभिक जांच में शामिल नहीं हैं, और उसके बाद आरोप-पत्र तैयार किया गया था। उन बयानों की प्रतियां, हालांकि उत्तरवादी द्वारा मांगी गई थीं, उन्हें प्रदान नहीं की गईं। चूंकि इस संबंध में अपीलकर्ता की ओर से भी विफलता थी, इसलिए न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचने में उचित था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था और उत्तरवादी को सुनवाई का प्रभावी अवसर नहीं दिया गया था, खासकर इसलिए क्योंकि अपीलकर्ता यह साबित करने में विफल रहा कि प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए बयानों की प्रतियां न दिए जाने से उत्तरवादी को अपना बचाव करने में कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था।"

24. उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **विवेका नंद सेठी बनाम चेयरमैन, जेएंडके बैंक लिमिटेड और अन्य⁶** के मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों पर बहुत अधिक अवलंब लिया गया। विवेका नंद सेठी बनाम चेयरमैन, जेएंडके बैंक लिमिटेड और अन्य (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कंडिका 22 में निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"22. प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत, यह घिसा-पिटा है, कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। जब तथ्य स्वीकार कर लिए जाते हैं, तो जांच एक खाली औपचारिकता होगी। यहां तक कि विबधन का सिद्धांत भी लागू होगा। [गुरजीवन गरेवाल (डॉ.) बनाम डॉ. सुमित्रा दाश³ देखें।]



प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। इसे किसी एक सूत्र में नहीं रखा जा सकता। इसे मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ के बिना शून्य में लागू नहीं किया जा सकता। (देखें पंजाब राज्य बनाम जागीर सिंह⁴ और कर्नाटक एसआरटीसी बनाम एस.जी. कोट्टूरप्पा⁵)

25. उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत **ओम प्रकाश मान बनाम संचालक, शिक्षा (बुनियादी)**⁷ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कंडिका 9 में निम्नानुसार टिप्पणी की है :-

"9. अब तक यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत मूर्त नियम नहीं हैं। उन्हें एक अनम्य सूत्र के सिद्धांत में लागू नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन स्थापित किया जाना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करने के कारण उनके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हो गया है। जैसा कि उच्च न्यायालय ने माना है कि अपीलकर्ता ने यह दिखाने में सक्षम नहीं है की जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत न करने से उसके प्रति किस प्रकार का पूर्वाग्रह हुआ है। अपीलकर्ता ने अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष एक विस्तृत अपील दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया है। यह उसका मामला नहीं है कि उसे जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत न करने के कारण प्रभावी अपील से वंचित कर दिया गया है। बिना किसी आपत्ति के उन्होंने जांच कार्यवाही में भाग लिया है। यह निर्विवाद है कि अपीलकर्ता को पर्याप्त अवसर दिया गया है और उसने पूरी जांच कार्यवाही में भाग लिया है, उसकी बात सुनी गई है और उसे जांच समिति के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई है।"

26. उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा ऊपर उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं। वर्तमान मामले में, संपूर्ण विभागीय कार्यवाही खराब थी क्योंकि जांच कार्यवाही का पहला चरण अर्थात् उत्तरवादीगण द्वारा दोषी कर्मचारी पर आरोप-पत्र की वास्तविक तामील नहीं की गई थी। उत्तरवादीगण द्वारा याचिकाकर्ता के निवास पर आरोप-पत्र चिपकाने का कथित तरीका, नियम 1966 के नियम 30 के तहत निर्धारित तरीकों में से एक नहीं है। बाद में नोटिस का प्रकाशन या पंजीकृत डाक द्वारा तिथियों का संचार जांच के पहले चरण का पर्याप्त अनुपालन नहीं है, जिसके कारण याचिकाकर्ता को उत्तर दाखिल करने और जांच अधिकारी के समक्ष अपना मामला प्रभावी ढंग से रखने का अवसर नहीं मिल पाया। याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र की तामील न होने से उसे हुए पूर्वाग्रह को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है। आरोप-पत्र की तामील के संबंध में ऊपर बताए गए स्पष्ट निष्कर्षों के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य बिंदुओं पर जाना आवश्यक नहीं है।



27. याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह कहीं और लाभकारी रूप से कार्यरत नहीं था और उसे मानसिक पीड़ा और वित्तीय दायित्व का सामना करना पड़ा है। उत्तरवादी याचिकाकर्ता के तर्क का खंडन करने की स्थिति में नहीं हैं। इस प्रकार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता आक्षेपित आदेशों को रद्द करने से मिलने वाले 50% पिछले वेतन का हकदार है।

28. परिणामस्वरूप और कानून के सुस्थापित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, पुलिस महानिरीक्षक द्वारा दिनांक 19.8.1999 (अनुलग्नक पी/2) को पारित आक्षेपित आदेश तथा पुलिस महानिदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.5.2002 (अनुलग्नक पी/3) को दूषित विभागीय जांच के कारण अभिखंडित किया जाता है। हालांकि, यह आदेश उत्तरवादीगण /अधिकारियों के लिए कानून के अनुसार, यदि सलाह दी जाती है, तो नई विभागीय जांच प्रारंभ करने के आदेश में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगी !

29. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है !



सही/-
सतीश के अग्रिहोत्री
न्यायाधीश

1. (एआईआर 1991 एससी 471)
2. {(1991) 4 एससीसी 109}
3. {(1993) 3 एससीसी 196}
4. {(1998) 7 एससीसी 569}
5. (एआईआर 1998 एससी 3038)
6. {(2005) 5 एससीसी 337}
7. {(2006) 7 एससीसी 558}

अस्वीकरण हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्ष कारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालय एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated Byतेजस्विता नंदिनी शाह, अधिवक्ता